श्रीमद्भागवत रसिक कुटुंब

रास पंचाध्याय 10.29 (अर्थ)

श्रीशुक उवाच

भगवानपि ता रात्रीः(श्), शरदोत्फुल्लमल्लिकाः ।

वीक्ष्य रन्तुं(म्) मनश्चक्रे, योगमायामुपाश्रितः ॥ 1॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं- परीक्षित्! शरद् ऋतु थी। उसके कारण बेला, चमेली आदि सुगन्धित पुष्प खिलकर महँ महँ महँक रहे थे। भगवान्ने चीरहरणके समय गोपियोंको जिन रात्रियोंका सङ्केत किया था, वे सब की सब पुञ्जीभूत होकर एक ही रात्रिके रूपमें उल्लसित हो रही थीं। भगवान्ने उन्हें देखा, देखकर दिव्य बनाया। गोपियाँ तो चाहती ही थीं। अब भगवान् ने भी अपनी अचिन्त्य महाशक्ति योगमायाके सहारे उन्हें निमित्त बनाकर रसमयी रासक्रीडा करनेका सङ्कल्प किया। अमना होनेपर भी उन्होंने अपने प्रेमियोंकी इच्छा पूर्ण करनेके लिये मन स्वीकार किया ॥ 1 ॥

तदोडुराजः(ख्) ककुभः(ख्) करैर्मुखं(म्),

प्राच्या विलिम्पन्नरुणेन शन्तमैः ।

स चर्षणीनामुदगाच्छुचो मृजन्,

प्रियः(फ्) प्रियाया इव दीर्घदर्शनः ॥ 2॥

भगवान्के सङ्कल्प करते ही चन्द्रदेवने प्राची दिशाके मुखमण्डलपर अपने शीतल किरणरूपी करकमलोंसे लालिमाकी रोली-केसर मल दी, जैसे बहुत दिनों बाद अपनी प्राणप्रिया पत्नीके पास आकर उसके प्रियतम पतिने उसे आनन्दित करनेके लिये ऐसा किया हो ! इस प्रकार चन्द्रदेवने उदय होकर न केवल पूर्वदिशाका, प्रत्युत संसारके समस्त चर-अचर प्राणियोंका सन्ताप — जो दिनमें शरत्कालीन प्रखर सूर्य-रश्मियोंके कारण बढ़ गया था— - दूर कर दिया ॥ 2 ॥

दृष्ट्वा कुमुद्वन्तमखण्डमण्डलं(म्),

रमाननाभं(न्) नवकुं(ङ्)कुमारुणम्।

वनं(ञ्) च तत्कोमलगोभिरं(ञ्)जितं(ञ्),

जगौ कलं(वँ) वामदृशां(म्) मनोहरम् ॥ 3॥

उस दिन चन्द्रदेवका मण्डल अखण्ड था। पूर्णिमाकी रा थी। वे नूतन केशरके समान त्याल-लाल हो रहे थे, कुछ सोच मिश्रित अभिलाषासे युक्त जान पड़ते थे। उनका मुखमण्डल | लक्ष्मीजीके समान मालूम हो रहा था। उनकी कोमल किरणोंसे सारा वन अनुरागके रंग में रंग गया था। वनके कोने-कोने में उन्होंने अपनी चाँदनीके द्वारा अमृतका समुद्र उड़ेल दिया था। भगवान् श्रीकृष्णने अपने दिव्य उज्ज्वल रसके उद्दीपनकी पूरी सामग्री उन्हें और

उस वनको देखकर अपनी बाँसुरीपर वजसुन्दरियोंके मनको हरण करनेवाली कामबीज 'क्री' की अस्पष्ट एवं मधुर तान छेड़ी ॥ 3 ॥

निशम्य गीतं(न्) तदनङ्गवर्धनं(वँ),

व्रजस्त्रियः(ख्) कृष्णगृहीतमानसाः ।

आजग्मुरन्योन्यमलक्षितोद्यमाः(स्),

स यत्र कान्तो जवलोलकुण्डलाः ॥ 4॥

भगवान्का वह वंशीवादन भगवान्के प्रेमको, उनके मिलनकी लालसाको अत्यन्त उकसानेवाला - बढ़ानेवाला था। यों तो श्यामसुन्दरने पहलेसे ही गोपियोंके मनको अपने वशमें कर रखा था। अब तो उनके मनकी सारी वस्तुएँ—भय, सङ्कोच, धैर्य, मर्यादा आदिकी वृत्तियाँ भी छीन लीं वंशीध्वनि सुनते ही उनकी विचित्र गति हो गयी। जिन्होंने एक साथ साधना की थी श्रीकृष्णको पतिरूपमें प्राप्त करनेके लिये, वे गोपियाँ भी एक-दूसरेको सूचना न देकर—यहाँतक कि एक-दूसरेसे अपनी चेष्टाको छिपाकर जहाँ वे थे, वहाँके लिये चल पड़ीं। परीक्षित्! वे इतने वेगसे चली थीं कि उनके कानोंके कुण्डल झोंके खा रहे थे ॥ 4 ॥

दुहन्त्योऽभिययुः(ख्) काश्चिद्, दोहं(म्) हित्वा समुत्सुकाः ।

पयोऽधिश्रित्य सं(यँ)याव- मनुद्वास्यापरा ययुः ॥ 5॥

वंशीध्वनि सुनकर जो गोपियाँ दूध दुह रही थीं, वे अत्यन्त उत्सुकतावश दूध दुहना छोड़कर चल पड़ीं। जो चूल्हेपर दूध औंटा रहीं थीं, वे उफनता हुआ दूध छोड़कर और जो लपसी |पका रही थीं वे पकी हुई लपसी बिना उतारे ही ज्यों-की-त्यों छोड़कर चल दीं ॥ 5 ॥

परिवेषयन्त्यस्तद्धित्वा, पाययन्त्यः(श्) शिशून् पयः ।

शुश्रूषन्त्यः(फ्) पतीन् काश्चि- दश्नन्त्योऽपास्य भोजनम् ॥ 6॥

जो भोजन परस रही थीं वे परसना छोड़कर, जो छोटे-छोटे बच्चोंको दूध पिला रही थीं वे दूध पिलाना छोड़कर जो पतियों की सेवा-शुश्रूषा कर रही थी वे सेवाशुश्रूषा छोड़कर और जो स्वयं भोजन कर रही थीं वे भोजन करना छोड़कर अपने कृष्णप्यारेके पास चल पड़ीं ॥ 6 ॥

लिम्पन्त्यः(फ्) प्रमृजन्त्योऽन्या, अं(ञ्)जन्त्यः(ख्) काश्च लोचने ।

व्यत्यस्तवस्त्राभरणाः(ख्), काश्चित् कृष्णान्तिकं(यँ) ययुः ॥ 7॥

कोई कोई गोपी अपने शरीरमें अङ्गराग चन्दन और उबटन लगा रही थीं और कुछ असमें अंजन लगा रही थीं। वे उन्हें छोड़कर तथा उलटे-पलटे वस्त्र धारणकर श्रीकृष्णके पास पहुँचनेके लिये चल पड़ीं ॥ 7 ॥

ता वार्यमाणाः(फ्) पतिभिः(फ्), पितृभिर्भ्रातृबन्धुभिः ।

गोविन्दापहृतात्मानो, न न्यवर्तन्त मोहिताः ॥ 8॥

पिता और पतियोंने, भाई और जाति वधुओंने उन्हें रोका, उनकी मङ्गलमयी प्रेमयात्रा डाला। परन्तु वे इतनी मोहित हो गयी थीं कि रोकनेपर भी न स्त्री न रुक सकीं रुकती कैसे? विश्वविमोहन श्रीकृष्ण उनके प्राण, मन और आत्मा सब कुछका अपहरण जो कर लिया था।॥ 8 ॥

अन्तर्गृहगताः(ख्) काश्चिद्- गोप्योऽलब्धविनिर्गमाः ।

कृष्णं(न्) तद्भावनायुक्ता, दध्युर्मीलितलोचनाः ॥ 9॥

परीक्षित् | उस समय कुछ गोपियाँ घरों के भीतर थीं। उन्हें बाहर निकलनेका मार्ग ही न मिला। तब उन्होंने अपने नेत्र दलिये और बड़ी तन्मयतासे श्रीकृष्णके | सौन्दर्य, माधुर्य और लीलाओंका ध्यान करने लगीं ॥ 9 ॥

दुः(स्)सहप्रेष्ठविरह- तीव्रतापधुताशुभाः ।

ध्यानप्राप्ताच्युताश्लेष- निर्वृत्या क्षीणमङ्गलाः ॥ 10॥

परीक्षित् | अपने परम प्रियतम श्रीकृष्णके असा विरहकी तीव्र वेदनासे उनके हृदयमें इतनी व्यथा - इतनी जलन हुई कि उनमें जो कुछ अशुभ संस्कारोंका लेशमात्र अवशेष था, वह भस्म हो गया। इसके बाद तुरंत ही ध्यान लग गया। ध्यानमें उनके सामने भगवान् श्रीकृष्ण प्रकट हुए। उन्होंने मन-ही-मन बड़े प्रेमसे, बड़े आवेगसे उनका आलिङ्गन किया। उस समय उन्हें इतना सुख, इतनी शान्ति मिली कि उनके सब-के-सब पुण्यके संस्कार एक साथ ही क्षीण हो गये ॥ 10 ॥

तमेव परमात्मानं(ञ्),जारबुद्ध्यापि सङ्गताः।

जहुर्गुणमयं(न्) देहं(म्), सद्यः(फ्) प्रक्षीणबन्धनाः ॥ 11॥

परीक्षित् | यद्यपि उनका उस समय श्रीकृष्णके प्रति जारभाव भी था; तथापि कहीं सत्य वस्तु भी भावकी अपेक्षा रखती है ? उन्होंने जिनका आलिङ्गन किया, चाहे किसी भी भावसे किया हो, वे स्वयं परमात्मा ही तो थे । इसलिये उन्होंने पाप और पुण्यरूप कर्मके परिणामसे बने हुए गुणमय शरीरका परित्याग कर दिया। (भगवान्की लीला सम्मिलित होनेके योग्य दिव्य अप्राकृत शरीर प्राप्त कर लिया।) इस शरीरसे भोगे जानेवाले कर्मबन्धन तो ध्यानके समय ही छिन्न-भिन्न हो चुके थे ॥ 11 ॥

राजोवाच

कृष्णं(वँ) विदुः(फ्) परं(ङ्) कान्तं(न्), न तु ब्रह्मतया मुने ।

गुणप्रवाहोपरमस्- तासां(ङ्) गुणधियां(ङ्) कथम् ॥ 12॥

राजा परीक्षित्ने पूछा- भगवन्! गोपियाँ तो भगवान् श्रीकृष्णको केवल अपना परम प्रियतम ही मानती थीं। उनका उनमें ब्रह्मभाव नहीं था। इस प्रकार उनकी दृष्टि प्राकृत गुणोंमें ही आसक्त दीखती है। ऐसी स्थितिमें उनके लिये गुणोंके प्रवाहरूप इस संसारकी निवृत्ति कैसे सम्भव हुई ? ॥ 12 ॥

श्रीशुक उवाच

उक्तं(म्) पुरस्तादेतत्ते, चैद्यः(स्) सिद्धिं(यँ) यथा गतः ।

द्विषन्नपि हृषीकेशं(ङ्), किमुताधोक्षजप्रियाः ॥ 13॥

श्रीशुकदेवजीने कहा- परीक्षित्! मैं तुमसे पहले ही कह चुका हूँ कि चेदिराज शिशुपाल भगवान्के प्रति द्वेष भाव रखनेपर भी अपने प्राकृत शरीरको छोड़कर अप्राकृत शरीरसे उनका पार्षद हो गया। ऐसी स्थितिमें जो समस्त प्रकृति और उसके गुणोंसे अतीत भगवान् श्रीकृष्णकी प्यारी हैं और उनसे अनन्य प्रेम करती है, वे गोपियाँ उन्हें प्राप्त हो जायँ — इसमें कौन-सी आश्चर्यकी बात है ॥ 13 ॥

नृणां(न्) निः(श्)श्रेयसार्थाय, व्यक्तिर्भगवतो नृप ।

अव्ययस्याप्रमेयस्य , निर्गुणस्य गुणात्मनः ॥ 14॥

परीक्षित् । वास्तवमें भगवान् प्रकृतिसम्बन्धी वृद्धि-विनाश, प्रमाण- प्रमेव और गुणगुणीभावसे रहित हैं। वे अचिन्त्य अनन्त अप्राकृत परम कल्याणस्वरूप गुणोंके एकमात्र आश्रय है। उन्होंने यह जो अपनेको तथा अपनी लीलाको प्रकट किया है, उसका प्रयोजन केवल इतना ही है कि जीव उसके सहारे अपना परम कल्याण सम्पादन करे ॥ 14 ॥

कामं(ङ्) क्रोधं(म्) भयं(म्) स्नेह- मैक्यं(म्) सौहृदमेव च ।

नित्यं(म्) हरौ विदधतो, यान्ति तन्मयतां(म्) हि ते ॥ 15॥

इसलिये भगवान् से केवल सम्बन्ध हो जाना चाहिये। वह सम्बन्ध चाहे जैसा हो— कामका हो, क्रोधका हो या भयका हो; स्नेह, नातेदारी या सौहार्दका हो। चाहे जिस भावसे भगवान् निल्य-निरन्तर अपनी वृत्तियाँ जोड़ दी जायें, वे भगवान् से ही जुड़ती है। इसलिये वृत्तियों भगो जाती हैं और उस जीवको भगवान्की ही प्राप्ति होती है ॥ 15 ॥

न चैवं(वँ) विस्मयः(ख्) कार्यो, भवता भगवत्यजे ।

योगेश्वरेश्वरे कृष्णे, यत एतद् विमुच्यते ॥ 16॥

परीक्षित्! तुम्हारे जैसे परम भागवत भगवान्का रहस्य जाननेवाले भक्तको श्रीकृष्ण के सम्बन्धमें ऐसा सन्देह नहीं करना चाहिये। योगेश्वरोंके भी ईश्वर अजन्मा भगवान् के लिये भी यह कोई आर्य की बात है? अरे उनके सङ्कल्पमाभौहोंके इशारेसे सारे जगत्का परम कल्याण हो सकता है ॥ 16 ॥

ता दृष्ट्वान्तिकमायाता, भगवान् व्रजयोषितः ।

अवदद् वदतां(म्) श्रेष्ठो, वाचः(फ्) पेशैर्विमोहयन् ॥ 17॥

जब भगवान् श्रीकृष्णने देखा कि व्रजकी अनुपम विभूतियाँ गोपियाँ मेरे बिलकुल पास आ गयी है, तब उन्होंने अपनी विनोदभरी वाक्चातुरीसे उन्हें मोहित करते हुए कहा—क्यों न हो—भूत, भविष्य और वर्तमानकालके जितने वक्ता है, उनमें वे ही तो सर्वश्रेष्ठ है ॥ 17 ॥

श्रीभगवानुवाच

स्वागतं(वँ) वो महाभागाः(फ्), प्रियं(ङ्) किं(ङ्) करवाणि वः ।

व्रजस्यानामयं(ङ्) कच्चिद्, ब्रूतागमनकारणम् ॥ 18॥

भगवान् श्रीकृष्णने कहा- महाभाग्यवती गोपियो। तुम्हारा स्वागत है। बतलाओ, तुम्हें प्रसन्न करनेके लिये मैं कौन-सा काम करूँ ? व्रजमें तो सब कुशल-मङ्गल हैन ? कहो, इस समय यहाँ आनेकी क्या आवश्यकता पड़ गयी ? ॥ 18 ॥

रजन्येषा घोररूपा, घोरसत्त्वनिषेविता ।

प्रतियात व्रजं(न्) नेह, स्थेयं(म्) स्त्रीभिः(स्) सुमध्यमाः ॥ 19॥

सुन्दरी गोपियो ! रातका समय है, यह स्वयं ही बड़ा भयावना होता है और इसमें बड़े-बड़े भयावने जीव जन्तु इधर-उधर घूमते रहते हैं। अतः तुम सब तुरंत व्रजमें लौट जाओ। रातके समय घोर जंगलमें स्त्रियोंको नहीं रुकना चाहिये ॥ 19 ॥

मातरः(फ्) पितरः(फ्) पुत्रा, भ्रातरः(फ्) पतयश्च वः ।

विचिन्वन्ति ह्यपश्यन्तो, मा कृद्वं(म्) बन्धुसाध्वसम् ॥ 20॥

तुम्हें न देखकर तुम्हारे माँ-बाप, पति-पुत्र | और भाई बन्धु ढूँढ रहे होंगे। उन्हें भयमें न डालो ॥ 20 ॥

दृष्टं(वँ) वनं(ङ्) कुसुमितं(म्), राकेशकररं(ञ्)जितम् ।

यमुनानिललीलैजत्-तरुपल्लवशोभितम् ॥ 21॥

तुमलोगोंने रंग-बिरंगे पुष्पोंसे लदे हुए इस वनकी शोभाको देखा। पूर्ण चन्द्रमाकी कोमल रश्मियोंसे यह रंगा हुआ है, मानो उन्होंने अपने हाथों चित्रकारी की हो; और बमुनाजीके जलका स्पर्श करके बहनेवाले शीतल समीरकी मन्द मन्द गति से हिलते हुए ये वृक्षोंके पत्ते तो इस वनकी शोभाको और भी बढ़ा रहे हैं। परन्तु अब तो तुमलोगोंने यह सब कुछ देख लिया ॥ 21 ॥

तद् यात मा चिरं(ङ्) गोष्ठं(म्), शुश्रूषध्वं(म्) पतीन् सतीः ।

क्रन्दन्ति वत्सा बालाश्च, तान् पाययत दुह्यत ॥ 22॥

अब देर मत करो, शीघ्र से शीघ्र व्रजमें लौट जाओ। तुमलोग कुलीन स्त्री हो और स्वयं भी सती हो; जाओ, अपने पतियों की और सतियोंकी सेवा-शुश्रूषा करो। देखो, तुम्हारे घरके नन्हे नन्हे बच्चे और गौओके बछड़े रो-रंभा रहे हैं; उन्हें दूध पिलाओ, गौएँ दुहरे ॥ 22 ॥

अथवा मदभिस्नेहाद्-भवत्यो यन्त्रिताशयाः ।

आगता ह्युपपन्नं(वँ) वः(फ्), प्रीयन्ते मयि जन्तवः ॥ 23॥

अथवा यदि मेरे प्रेमसे परवश होकर तुमलोग यहाँ आयी हो तो इसमें कोई अनुचित बात नहीं हुई, यह तो तुम्हारे योग्य ही है; क्योंकि जगत्के पशु-पक्षीतक मुझसे प्रेम करते हैं, मुझे | देखकर प्रसन्न होते हैं ॥ 23 ॥

भर्तुः(श्) शुश्रूषणं(म्) स्त्रीणां(म्), परो धर्मो ह्यमायया ।

तद्बन्धूनां(ञ्) च कल्याण्यः(फ्), प्रजानां(ञ्) चानुपोषणम् ॥ 24॥

कल्याणी गोपियो ! स्त्रियोंका परम धर्म यही है कि वे पति और उसके भाई-वधुओंकी निष्कपटभावसे सेवा करें और सन्तानका पालन-पोषण करें. ॥ 24 ॥

दुः(श्)शीलो दुर्भगो वृद्धो, जडो रोग्यधनोऽपि वा ।

पतिः(स्) स्त्रीभिर्न हातव्यो, लोकेप्सुभिरपातकी ॥ 25॥

जिन स्त्रियोंको उत्तम लोक प्राप्त करनेकी अभिलाषा हो, वे पातकीको छोड़कर और किसी भी प्रकारके पतिका परित्याग न करें। भले ही वह बुरे भाव भाग्यहीन, वृद्ध, मूर्ख, रोगी या निर्धन ही क्यों न हो। ॥ 25 ॥

अस्वर्ग्यमयशस्यं(ञ्) च, फल्गु कृच्छ्रं(म्) भयावहम् ।

जुगुप्सितं(ञ्) च सर्वत्र, औपपत्यं(ङ्) कुलस्त्रियाः ॥ 26॥

कुलीन स्त्रियोंके लिये जार पुरुषकी सेवा सब तरहसे निन्दनीय ही है। है | इससे उनका परलोक बिगड़ता है, स्वर्ग नहीं मिलता, इस लोकमे अपयश होता है। यह कुकर्म स्वयं तो अत्यन्त तुच्छ, क्षणिक है ही, इसमें प्रत्यक्ष-

वर्तमानमें भी कष्ट ही कष्ट है। मोक्ष आदिको तो बात हो कौन करे, यह साक्षात् परम भय-नरक आदिका हेतु है ॥ 26 ॥

श्रवणाद् दर्शनाद् ध्यानान्- मयि भावोऽनुकीर्तनात् ।

न तथा सन्निकर्षेण, प्रतियात ततो गृहान् ॥ 27॥

गोपियो। मेरी लीला और गुणोंके श्रवणसे, रूपके दर्शनसे, उन सबके कीर्तन और ध्यानसे मेरे प्रति जैसे अनन्य प्रेमकी प्राप्ति होती है, वैसे प्रेमकी प्राप्ति पास रहनेसे नहीं होती। इसलिये तुमलोग अभी अपने-अपने घर लौट जाओ ॥ 27 ॥

श्रीशुक उवाच

इति विप्रियमाकर्ण्य ,गोप्यो गोविन्दभाषितम् ।

विषण्णा भग्नसं(ङ्)कल्पाश्-चिन्तामापुर्दुरत्ययाम् ॥ 28॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं- परीक्षित्! भगवान् श्रीकृष्णका यह अप्रिय भाषण सुनकर गोपियाँ उदास, खिन्न हो गयीं। उनकी आशा टूट गयी। वे चिन्ताके अथाह एवं अपार समुद्रमें डूबने-उतराने लगीं ॥ 28 ॥

कृत्वा मुखान्यव शुचः(श्) श्वसनेन शुष्यद्

बिम्बाधराणि चरणेन भुवं(म्) लिखन्त्यः ।

अस्रैरुपात्तमषिभिः(ख्) कुचकुं(ङ्)कुमानि,

तस्थुर्मृजन्त्य उरुदुःखभराः(स्) स्म तूष्णीम् ॥ 29॥

उनके बिम्बाफल (पके हुए कुँदरू) के समान लाल-लाल अधर शोकके कारण चलनेवाली लम्बी और गरम साँससे सूख गये। उन्होंने अपने मुँह नीचेकी ओर लटका लिये, वे पैरके नखोंसे धरती कुरेदने लगीं। नेत्रोंसे दुःखके आँसू बह बहकर काजलके साथ वक्षःस्थलपर पहुँचने और वहाँ लगी हुई केशरको धोने लगे। | उनका हृदय दुःखसे इतना भर गया कि वे कुछ बोल न सकीं, चुपचाप खड़ी रह गयीं ॥ 29 ॥

प्रेष्ठं(म्) प्रियेतरमिव प्रतिभाषमाणं(ङ्),

कृष्णं(न्) तदर्थविनिवर्तितसर्वकामाः ।

नेत्रे विमृज्य रुदितोपहते स्म किं(ञ्)चित्

सं(म्)रम्भगद्गदगिरोऽब्रुवतानुरक्ताः ॥ 30॥

गोपियोंने अपने प्यारे श्यामसुन्दरके लिये सारी कामनाएँ, सारे भोग छोड़ दिये थे। श्रीकृष्णमें उनका अनन्य अनुराग, परम प्रेम था। जब उन्होंने अपने प्रियतम श्रीकृष्णकी यह निष्ठुरतासे भरी बात सुनी जो बड़ी ही अप्रिय-सी मालूम हो रही थी, तब उन्हें बड़ा दुःख हुआ। आँखें रोते-रोते लाल हो गयीं आँसुओंके मारे गय उन्होंने धीरज धारण करके अपनी आँखोंके आँसू पोछे और फिर प्रणयकोपके कारण वे गद्गद वाणीसे कहने लगीं॥ 30 ॥

गोप्य ऊचुः

मैवं(वँ) विभोऽर्हति भवान् गदितुं(न्) नृशं(म्)सं(म्),

सन्त्यज्य सर्वविषयां(म्)स्तव पादमूलम् ।

भक्ता भजस्व दुरवग्रह मा त्यजास्मान्

देवो यथाऽऽदिपुरुषो भजते मुमुक्षून् ॥ 31॥

गोपियोंने कहा- प्यारे श्रीकृष्ण तुम घट-घट व्यापी हो। हमारे हृदयकी बात जानते हो। तुम्हें इस प्रकार निष्ठुरताभरे वचन नहीं कहने चाहिये। हम सब कुछ छोड़कर केवल तुम्हारे चरणोंमें ही प्रेम करती हैं। इसमें सन्देह नहीं कि तुम स्वतन्त्र और हठीले हो। तुमपर हमारा कोई वश नहीं है। फिर भी तुम अपनी ओरसे, जैसे आदिपुरुष भगवान् नारायण कृपा करके अपने मुमुक्षु भक्तोंसे प्रेम करते हैं, वैसे ही हमें स्वीकार कर लो। हमारा त्याग मत करो ॥ 31 ॥

यत्पत्यपत्यसुहृदामनुवृत्तिरङ्ग

स्त्रीणां(म्) स्वधर्म इति धर्मविदा त्वयोक्तम् ।

अस्त्वेवमेतदुपदेशपदे त्वयीशे

प्रेष्ठो भवां(म्)स्तनुभृतां(ङ्) किल बन्धुरात्मा ॥ 32॥

प्यारे श्यामसुन्दर । तुम सब धर्मोका | रहस्य जानते हो। तुम्हारा यह कहना कि 'अपने पति, पुत्र और भाई-बन्धुओंकी सेवा करना ही स्त्रियोंका स्वधर्म है अक्षरशः ठीक है। परन्तु इस उपदेशके अनुसार हमें तुम्हारी ही सेवा करनी चाहिये; क्योंकि तुम्हीं सब उपदेशोंके पद (चरम लक्ष्य) हो; साक्षात् भगवान् हो। तुम्हीं समस्त शरीरधारियोंके सुहृद् हो, आत्मा हो और परम प्रियतम हो । ॥ 32 ॥

कुर्वन्ति हि त्वयि रतिं(ङ्) कुशलाः(स्) स्व आत्मन्

नित्यप्रिये पतिसुतादिभिरार्तिदैः(ख्) किम् ।

तन्नः(फ्) प्रसीद परमेश्वर मा स्म छिन्द्या

आशां(न्) भृतां(न्) त्वयि चिरादरविन्दनेत्र ॥ 33॥

आत्मज्ञानमे निपुण महापुरुष तुमसे ही प्रेम करते हैं; क्योंकि तुम नित्य प्रिय एवं अपने ही आत्मा हो। अनित्य एवं दुखद पति-पुत्रादिसे क्या प्रयोजन है ? परमेश्वर इसलिये हमपर प्रसन्न होओ। कृपा करो। कमलनयन ! चिरकालसे तुम्हारे प्रति पाली-पोसी आशा अभिलाषाकी लहलहाती लताका छेदन मत करो ॥ 33 ॥

चित्तं(म्) सुखेन भवतापहृतं(ङ्) गृहेषु

यन्निर्विशत्युत करावपि गृह्यकृत्ये ।

पादौ पदं(न्) न चलतस्तव पादमूलाद्-

यामः(ख्) कथं(वँ) व्रजमथो करवाम किं(वँ) वा ॥ 34॥

मनमोहन ! अबतक हमारा चित्त घरके काम-धंधो लगता था। इसीसे हमारे हाथ भी उनमें रमे हुए थे। परन्तु तुमने हमारे देखते-देखते हमारा वह चित लूट लिया। इसमें तुम्हें कोई कठिनाई भी नहीं उठानी पड़ी, तुम तो सुखस्वरूप हो न ! परन्तु | अब तो हमारी गति-मति निराली ही हो गयी है। हमारे ये पैर तुम्हारे चरणकमलोंको छोड़कर एक पग भी हटनेके लिये तैयार नहीं है, नहीं हट रहे हैं। फिर हम व्रजमें कैसे जाये ? और यदि वहाँ जाये भी तो करें क्या ? ॥ 34 ॥

सिञ्चाङ्ग नस्त्वदधरामृतपूरकेण

हासावलोककलगीतजहृच्छयाग्निम् ।

नो चेद् वयं(वँ) विरहजाग्र्युपयुक्तदेहा

ध्यानेन याम पदयोः(फ्) पदवीं(म्) सखे ते ॥ 35॥

प्राणवल्लभ । हमारे प्यारे सखा तुम्हारी मन्द मन्द मधुर मुस्कान, प्रेमभरी चितवन और मनोहर संगीतने हमारे हृदयमें तुम्हारे प्रेम और मिलनकी आग धधका दी है। उसे तुम अपने अधरोंकी रसधारासे बुझा दो। नहीं तो प्रियतम हम सच कहती है, तुम्हारी विरह व्यथाकी आगसे हम अपने-अपने शरीर जला देगी और ध्यानके द्वारा तुम्हारे चरणकमलोंको प्राप्त करेंगी ॥ 35 ॥

यर्ह्यम्बुजाक्ष तव पादतलं(म्) रमाया

दत्तक्षणं(ङ्) क्वचिदरण्यजनप्रियस्य ।

अस्प्राक्ष्म तत्प्रभृति नान्यसमक्षमङ्ग

स्थातुं(न्) त्वयाभिरमिता बत पारयामः ॥ 36॥

प्यारे कमलनयन ! तुम वनवासियोंके प्यारे हो और वे भी तुमसे बहुत प्रेम करते हैं। इससे प्रायः तुम उन्हींके पास रहते हो। यहाँतक कि तुम्हारे जिन चरणकमलोंकी सेवाका अवसर स्वयं लक्ष्मीजीको कभी-कभी ही मिलता है, उन्हीं चरणोंका स्पर्श हमें प्राप्त हुआ। जिस दिन यह सौभाग्य हमें मिला और तुमने हमें स्वीकार करके आनन्दित किया, उसी दिनसे हम और किसीके सामने एक क्षणके लिये भी ठहरनेमें असमर्थ हो गयी हैं- पति पुत्रादिकोंकी सेवा तो दूर रही ॥ 36 ॥

श्रीर्यत्पदाम्बुजरजश्चकमे तुलस्या

लब्ध्वापि वक्षसि पदं(ङ्) किल भृत्यजुष्टम् ।

यस्याः(स्) स्ववीक्षणकृतेऽन्यसुरप्रयासस्-

तद्वद् वयं(ञ्) च तव पादरजः(फ्) प्रपन्नाः ॥ 37॥

हमारे स्वामी ! जिन लक्ष्मीजीका कृपाकटाक्ष प्राप्त करनेके लिये बड़े-बड़े देवता तपस्या करते रहते हैं, वही लक्ष्मीजी तुम्हारे वक्षःस्थलमें बिना किसीकी प्रतिद्वन्द्विताके स्थान प्राप्त कर लेनेपर भी अपनी सौत तुलसीके साथ तुम्हारे चरणोंकी रज पानेकी अभिलाषा किया करती हैं। अबतकके सभी भक्तोंने उस चरणरजका सेवन किया है। उन्होंके समान हम भी तुम्हारी उसी चरणरजकी शरण में आयी हैं॥ 37 ॥

तन्नः(फ्) प्रसीद वृजिनार्दन तेऽङ्घ्रिमूलं(म्),

प्राप्ता विसृज्य वसतीस्त्वदुपासनाशाः ।

त्वत्सुन्दरस्मितनिरीक्षणतीव्रकाम-

तप्तात्मनां(म्) पुरुषभूषण देहि दास्यम् ॥ 38॥

भगवन्! अबतक जिसने भी तुम्हारे चरणोंकी शरण ली, उसके सारे कष्ट तुमने मिटा दिये। अब तुम हमपर कृपा करो। हमें भी अपने प्रसादका भाजन बनाओ। हम तुम्हारी सेवा करनेकी आशा-अभिलाषासे घर, गाँव, कुटुम्ब

- सब कुछ छोड़कर तुम्हारे युगल चरणोंकी शरणमें आयी हैं। प्रियतम वहाँ तो तुम्हारी आराधनाके लिये अवकाश ही नहीं है। पुरुषभूषण! पुरुषोत्तम! तुम्हारी मधुर मुसकान और चारु चितवनने हमारे हृदयमें प्रेमकी मिलनकी आकाङ्क्षाकी आग धधका दी है; हमारा रोम-रोम उससे जल रहा है। तुम हमें अपनी दासीके रूपमें स्वीकार कर लो। हमें अपनी सेवाका अवसर दो ॥ 38 ॥

वीक्ष्यालकावृतमुखं(न्) तव कुण्डलश्री-

गण्डस्थलाधरसुधं(म्) हसितावलोकम् ।

दत्ताभयं(ञ्) च भुजदण्डयुगं(वँ) विलोक्य,

वक्षः(श्)श्रियैकरमणं(ञ्) च भवाम दास्यः ॥ 39॥

प्रियतम ! तुम्हारा सुन्दर मुखकमल, जिसपर घुँघराली अलके झलक रही हैं; तुम्हारे ये कमनीय कपोल, जिनपर सुन्दर-सुन्दर कुण्डल अपना अनन्त सौन्दर्यबिखेर रहे हैं; तुम्हारे ये मधुर अधर, जिनकी सुधा सुधाको भी जानेवाली है, तुम्हारी यह नयनमनोहारी चितवन, जो मन्द मन्द मुसकानसे उल्लसित हो रही है; तुम्हारी ये दोनों भुजाएँ, जो शरणागतोंको अभयदान देनेमें अत्यन्त उदार हैं और तुम्हारा यह वक्षःस्थल, जो लक्ष्मीजीका - सौन्दर्यकी एकमात्र देवीका नित्य क्रीडास्थल है, देखकर हम सब तुम्हारी दासी हो गयी है ॥ 39 ॥

का स्त्र्यङ्ग ते कलपदायतमूर्च्छितेन,

सम्मोहिताऽऽर्यचरितान्न चलेत्त्रिलोक्याम् ।

त्रैलोक्यसौभगमिदं(ञ्) च निरीक्ष्य रूपं(यँ),

यद् गोद्विजद्रुममृगाः(फ्) पुलकान्यबिभ्रन् ॥ 40॥

प्यारे श्यामसुन्दर ! तीनों लोकोंमें भी और ऐसी कौन-सी स्त्री है, जो मधुर-मधुर पद और आरोह-अवरोह-क्रमसे विविध प्रकारकी मूर्च्छनाओंसे युक्त तुम्हारी वंशीकी तान सुनकर तथा इस त्रिलोकसुन्दर मोहिनी मूर्तिको जो अपने एक बूँद सैन्दर्य त्रिलोकीको सौन्दर्यका दान करती है एवं जिसे देखकर गौ, पक्षी, वृक्ष और हरिन भी रोमाशित, पुलकित हो जाते हैं— अपने नेत्रोंसे निहारकर आर्य-मर्यादासे विचलित न हो जाय, कुल-कान और लोकलजाको त्यागकर तुममें अनुरक्त न हो जाय ॥ 40 ॥

व्यक्तं(म्) भवान् व्रजभयार्तिहरोऽभिजातो,

देवो यथाऽऽदिपुरुषः(स्) सुरलोकगोप्ता ।

तन्नो निधेहि करपं(ङ्)कजमार्तबन्धो,

तप्तस्तनेषु च शिरस्सु च किं(ङ्)करीणाम् ॥ 41॥

हमसे यह बात छिपी नहीं है कि जैसे भगवान् नारायण देवताओंकी रक्षा करते हैं, वैसे ही तुम व्रजमण्डलका भय और दुःख मिटानेके लिये ही प्रकट हुए हो और यह भी स्पष्ट ही है कि दीन-दुखियोंपर तुम्हारा बड़ा प्रेम, बड़ी कृपा है। प्रियतम! हम भी बड़ी दुःखिनी हैं। तुम्हारे मिलनकी आकांक्षाकी आगसे हमारा वक्षःस्थल जल रहा है। तुम अपनी इन दासियोंके वक्षःस्थल और सिरपर अपने कोमल करकमल रखकर इन्हें अपना लो; हमें जीवनदान दो ॥ 41 ॥

श्रीशुक उवाच

इति विक्लवितं(न्) तासां(म्), श्रुत्वा योगेश्वरेश्वरः ।

प्रहस्य सदयं(ङ्) गोपी- रात्मारामोऽप्यरीरमत् ॥ 42॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं- परीक्षित्! भगवान् श्रीकृष्ण सनकादि योगियों और शिवादि योगेश्वरोंके भी ईश्वर हैं। जब उन्होंने गोपियोंकी व्यथा और व्याकुलतासे भरी वाणी सुनी, तब उनका हृदय दयासे भर गया और यद्यपि वे आत्माराम है अपने-आपमें ही रमण करते रहते हैं, उन्हें अपने अतिरिक्त और किसी भी बाह्य वस्तुको अपेक्षा नहीं है, फिर भी उन्होंने हँसकर | उनके साथ क्रीडा प्रारम्भ की ॥ 42 ॥

ताभिः(स्) समेताभिरुदारचेष्टितः(फ्),

प्रियेक्षणोत्फुल्लमुखीभिरच्युतः ।

उदारहासद्विजकुन्ददीधितिर्-

व्यरोचतैणां(ङ्)क इवोडुभिर्वृतः ॥ 43॥

भगवान् श्रीकृष्णने अपनी भाव-भङ्गी और चेष्टाएँ गोपियोंके अनुकूल कर दीं फिर भी वे अपने स्वरूपमें ज्यों-के-त्यों एकरस स्थित थे, अच्युत थे। जब वे खुलकर हँसते, तब उनके उज्ज्वल-उज्ज्वल दाँत कुन्दकलीके समान जान पड़ते थे। उनकी प्रेमभरी चितवनसे और उनके दर्शनके आनन्दसे गोपियोंका मुखकमल प्रफुल्लित हो गया। वे उन्हें चारों ओरसे घेरकर खड़ी हो गयीं। उस समय श्रीकृष्णकी ऐसी शोभा हुई, मानो अपनी पत्नी तारिकाओंसे घिरे हुए चन्द्रमा ही हों ॥ 43 ॥

उपगीयमान उद्गायन्, वनिताशतयूथपः ।

मालां(म्) बिभ्रद् वैजयन्तीं(वँ), व्यचरन्मण्डयन् वनम् ॥ 44॥

गोपियोंके शत-शत यूथोंके स्वामी भगवान् श्रीकृष्ण वैजयन्ती माला पहने वृन्दावनको शोभायमान करते हुए विचरण करने लगे। कभी गोपियाँ अपने प्रियतम श्रीकृष्णके गुण और लीलाओंका गान करतीं, तो कभी श्रीकृष्ण गोपियोंके प्रेम और सौन्दर्यके गीत गाने लगते ॥ 44 ॥

नद्याः(फ्) पुलिनमाविश्य, गोपीभिर्हिमवालुकम् ।

रेमे तत्तरलानन्द- कुमुदामोदवायुना ॥ 45॥

इसके बाद भगवान् श्रीकृष्णने गोपियोंके साथ यमुनाजीके पावन पुलिनपर, जो कपूरके समान चमकीली बालूसे जगमगा रहा था, पदार्पणकिया। वह यमुनाजीकी तरल तरङ्गोंके स्पर्शसे शीतल और कुमुदिनीकी सहज सुगन्धसे सुवासित वायुके द्वारा सेवित हो रहा था। उस आनन्दप्रद पुलिनपर भगवान्ने गोपियोंके साथ क्रीडा की ॥ 45 ॥

बाहुप्रसारपरिरम्भकरालकोरु-

नीवीस्तनालभननर्मनखाग्रपातैः ।

क्ष्वेल्यावलोकहसितैर्व्रजसुन्दरीणा-

मुत्तम्भयन् रतिपतिं(म्) रमयाञ्चकार ॥ 46॥

हाथ फैलाना, आलिङ्गन करना, गोपियोंके हाथ दबाना, उनकी चोटी, जाँघ, नीवी और स्तन आदिका स्पर्श करना, विनोद करना, नखक्षत करना, विनोदपूर्ण चितवनसे देखना और मुसकाना – इन क्रियाओंके द्वारा गोपियोंके दिव्य कामरसको, परमोज्ज्वल प्रेमभावको उत्तेजित करते हुए भगवान् श्रीकृष्ण उन्हें क्रीडाद्वारा आनन्दित करने लगे ॥ 46 ॥

एवं(म्) भगवतः(ख्) कृष्णाल्- लब्धमाना महात्मनः ।

आत्मानं(म्) मेनिरे स्त्रीणां(म्), मानिन्योऽभ्यधिकं(म्) भुवि ॥ 47॥

उदारशिरोमणि सर्वव्यापक भगवान् श्रीकृष्णने जब इस प्रकार गोपियोंका सम्मान किया, तब गोपियोंके मनमें ऐसा भाव आया कि संसारकी समस्त स्त्रियोंमें हम ही सर्वश्रेष्ठ हैं, हमारे समान और कोई नहीं है। वे कुछ मानवती हो गयीं ॥ 47 ॥

तासां(न्) तत् सौभगमदं(वँ), वीक्ष्य मानं(ञ्) च केशवः ।

प्रशमाय प्रसादाय, तत्रैवान्तरधीयत ॥ 48॥

जब भगवान्ने देखा कि इन्हें तो अपने सुहागका कुछ गर्व हो आया है और अब मान भी करने लगी हैं, तब वे उनका गर्व शान्त करनेके लिये तथा उनका मान दूर कर प्रसन्न करनेके लिये वहीं— उनके बीचमें ही अन्तर्धान हो गये ॥ 48 ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहं(म्)स्यां(म्) सं(म्)हितायां(न्)

दशमस्कन्धे पूर्वार्धे भगवतो रासक्रीडावर्णनं(न्) नामैकोनत्रिं(म्)शोऽध्यायः ॥

YouTube Full video link

https://youtu.be/Enb2JEP0SuA